# 15. भारतीय संस्कृति

## बाबू गुलाबराय

### लेखक परिचय –

बाबू गुलाबराय का जन्म सन् 1888 को इटावा में हुआ। आप छतरपुर रियासत के महाराज के प्राईवेट सेक्रेटरी रहे थे, बाद में आगरा के सैण्ट जोन्स कॉलेज में प्रोफेसर रहे। बाबूजी मननशील व्यक्ति थे। हिंदी के प्रख्यात आलोचक, निबंधकार एवं संपादक के रूप में बाबू गुलाबराय ने प्रशंसनीय साहित्य सेवा की। 'साहित्य-संदेश' नामक पत्र द्वारा आपने साहित्य-जगत की खूब सेवा की। इस पत्र में आपके भावात्मक और विचारात्मक दोनों प्रकार के लेख प्रकाशित हुए।

आपका काव्यशास्त्र, निबंध एवं आलोचना के क्षेत्र में समान अधिकार था। 'ठलुआ क्लब', 'मेरी असफलताएँ', 'कुछ गहरे कुछ उथले' उनके श्रेष्ठ निबंध संग्रह हैं। उनके निबंध व्यक्तिपरक, विचारपरक एवं संस्मरणात्मक हैं। आपके लेख गंभीर और विचार-पूर्ण हैं। लेखों में सजीवता है, मधुर व्यंग्य और हास्य के पुट से आपके लेखों में वार्तालाप का-सा आनंद आता है। बाबू गुलाबराय ने व्याख्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए गंभीर आलोचकीय मुद्रा को त्याग कर अनौपचारिक रूप से लेखन कार्य किया है।

आपके विचारात्मक निबंधों की भाषा में तत्सम शब्दों के साथ उर्दू के शब्दों और मुहावरों का प्रयोग मिलता है। भावपूर्ण लेखों में भाषा गंभीर है। गुलाबराय जी की भाषा विषयानुकूल सरल और गंभीर रही है। गंभीर विषयों पर लिखे गए लेखों की भाषा संस्कृत-गर्भित है तथा हास्य रस पर लिखे गए लेखों की भाषा उर्दू शब्दों और मुहावरों से युक्त है। भाषा की विविधता आपके गंभीर ज्ञान का प्रमाण है। भाषा की तरह शैली भी विषयानुकूल गवेषणात्मक और समीक्षात्मक बन गई है।

### मूल पाठ –

'संस्कृति' शब्द का संबंध संस्कार से है जिसका अर्थ है संशोधन करना, उत्तम बनाना, परिष्कार करना। अंगरेजी शब्द 'कल्चर' में वही धातु है जो 'एग्रीकल्चर' में है। इसका भी अर्थ 'पैदा करना, सुधारना' है। संस्कार व्यक्ति के भी होते हैं और जाति के भी। जातीय संस्कारों को ही संस्कृति कहते हैं। संस्कृति एक समूहवाचक शब्द है। जलवायु के अनुकूल रहन-सहन की विधियाँ और विचार-परंपराएँ जाति के लोगों में दृढ़मूल हो जाने से जाति के संस्कार बन जाते हैं। इनको प्रत्येक व्यक्ति अपनी निजी प्रकृति के अनुकूल न्यूनाधिक मात्रा में पैतृक संपत्ति के रूप में प्राप्त करता है। ये संस्कार व्यक्ति के घरेलू जीवन तथा सामाजिक जीवन में परिलक्षित होते हैं। मुनष्य अकेला रहकर भी इनसे छुटकारा नहीं पा सकता। ये संस्कार दूसरे देश में निवास करने अथवा दूसरे देशवासियों के संपर्क में आने से कुछ परिवर्तित भी हो सकते हैं और कभी-कभी दब भी जाते हैं; किंतु अनुकूल वातावरण प्राप्त करने पर फिर उभर आते हैं।

संस्कृति का बाह्य पक्ष भी होता है और आंतरिक भी। उसका बाह्य पक्ष आंतरिक का प्रतिबिम्ब नहीं तो उससे संबंधित अवश्य रहता है। हमारे बाह्य आचार, हमारे विचारों और मनोवृत्तियों के परिचायक होते हैं। संस्कृति एक देश-विशेष की उपज होती है, उसका संबंध देश के भौतिक वातावरण और उसके

पालित, पोषित एवं परिवर्द्धित विचारों से होता है।

भाषा संस्कृति का कुछ बाहरी अंग-सा है, फिर भी वह हमारी जातीय मनोवृत्ति की परिचायिका होती है। 'कुशल' शब्द को ही लीजिए; वह हमारी उस संस्कृति की ओर संकेत करता है जिसमें कि पूजा-विधान की संपन्नता के लिए कुश लाना एक दैनिक कार्य बना हुआ था। जो कुश ला सकता था वह तन्दुरुस्त भी और होशियार भी समझा जाता था। 'प्रवीण' का संबंध वीणा से है – प्रकर्षः वीणायां प्रवीणः। हमारी भाषा में 'गो' से संबंधित शब्दों का बाहुल्य है; जैसे गोधूलि-बेला (जिसमें विवाह जैसे शुभ कार्य संपन्न होते हैं ), गोष्ठी, गवेषणा ( गाय की चाह या खोज के अर्थ-विस्तार द्वारा गवेषणा का अर्थ 'खोज' हो गया), गवाक्ष (गौ की आँख-खिड़कियों का आकार शायद पहले गोल होता होगा), गुरसी ( अँगीठी गोरसी से बनी है जिसमें गौ का दूध औटाया जाता था), गोपुच्छ (नाटक को गौ की पूँछ के समान बताया गया है – अंत में आकर मूल कथा ही रह जाती है और उसका फैलाव बंद हो जाता है), गोमुखी (जिसके भीतर माला फेरी जाती है और जिससे जल गिरता है उसे भी कहते हैं ), गोपन (छिपाना–यह शब्द भी गौ से संबंध रखता है; जो वस्तु पाली जाती है, सुरक्षित रखी जाती है, वह छिपाकर भी रखी जाती है) आदि। यह बाहुल्य हमारे समाज में गौ की प्रधानता का द्योतक है।

भारत गरम देश है। यहाँ हृदय को शीतल करना मुहावरा है, किंतु आंग्ल देश ठंडा है, वहाँ की परिस्थिति के अनुकूल warm reception और cold treatment आदि मुहावरे हैं। breaking the ice मौन भंग करने के अर्थ में आता है। ice ठंडेपन का प्रतीक है और मौन ठंडेपन का ही द्योतक है। अँग्रेजी का प्रयोग killing two birds with one stone वहाँ की हिंसात्मक प्रवृत्ति का परिचायक है। हमारे यहाँ इसका अनुवाद हुआ है 'एक ढेले में दो पंछी' किंतु उसमें वह मधुरता नहीं जो 'एक पंथ दो काज' में है। उसके कहते ही हमको 'गोरस बेचन हरि मिलन, एक पंथ दो काज' की बात याद आ जाती है।

हमारा रहन-सहन, पोशाक आदि सभी बातें जातीय परिस्थिति, देश के वातावरण और देश की भावनाओं से संबंधित हैं। जमीन पर बैठना, हाथ से खाना, नहाकर खाना, लम्बे-ढीले कपड़े पहनना, बेसिले कपड़ों को अधिक शुद्ध मानना, ये सब चीजें देश की आवश्यकताओं और आदर्शों के अनुकूल हैं। गरम देश में पृथ्वी का स्पर्श बुरा नहीं लगता। इसीलिए यहाँ जूतों का इतना मान नहीं है जितना कि विलायत में। यहाँ हाथ से खाने का चलन इसलिए हुआ कि यहाँ हर समय हाथ धोये जा सकते हैं। अन्न को भी देवता माना जाता है, उससे सीधा संपर्क अधिक सुखद और स्वाभाविक समझा जाता है। यहाँ नहाने के लिए जल की कमी नहीं और नहाने की आवश्यकता भी अधिक होती है, इसलिए नहाना धर्म का अंग हो गया है।

इस देश में शरीर को अधिक महत्त्व नहीं दिया जाता है। इसलिए लम्बे कपड़ों को, जो शरीर को उभार में न लावें और उसे पूर्णतया ढक लें, अधिक महत्त्व दिया जाता है। बेसिले कपड़े जैसे धोती आदि नित्य सहज में धोये जा सकते हैं। उसमें सीवन का भी किसी प्रकार का मैल नहीं रह सकता है, इसीलिए वे अधिक पवित्र माने जाते हैं। हमारे यहाँ नंगे सिर की अपेक्षा सर ढकना अधिक सांस्कृतिक समझा जाता है। ऐसा सभी पूर्वी देशों में है। यहूदियों के प्रार्थना-भवनों में भी नंगे सिर नहीं बैठते। बाल भी शरीर के अंग होने के कारण ढके जाने की अपेक्षा रखते हैं।

इसी प्रकार देश के वातावरण और रुचि के अनुकूल ही मांगल्य वस्तुओं का विधान किया जाता है। फूलों में हमारे यहाँ कमल को सबसे अधिक महत्त्व दिया जाता है। इसका संबंध जल और सूर्य दोनों से है।

वह जल में रहता है और सूर्य को देखकर प्रसन्न होता है। जल और सूर्य देश की महती आवश्यकताओं में से हैं, इसका दोनों से संबंध है। कमल ही सब प्रकार के शारीरिक सौंदर्य का उपमान बनता है – चरण–कमल, नेत्र-कमल, मुख-कमल आदि कमल की महत्ता के द्योतक हैं। ''नव कंज लोचन कंज मुख कर कंज पद कंजारुणम्'' इस छंद में सभी अंग कमल बन गए हैं।

आम्र (रसाल), कदली, दूर्वादल, नारियल, श्रीफल (शरीफा) आदि को मांगल्य कार्यों में प्रमुख स्थान दिया जाता है। आम यहाँ का विशेष मेवा है। इसमें रस भरा रहता है और इसका बौर बसन्त का अग्रदूत है। हमारे यहाँ अश्वत्थ (पीपल) को भी विशेष महत्ता दी गई है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् की विभूतियों में अश्वत्थ को भी माना गया है – 'अश्वत्थः सर्व वृक्षाणाम्।' भारतीय संस्कृति में जिन-जिन वस्तुओं को महत्ता दी गई है वे सब श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् की विभूतियों के रूप में आ गई हैं। भगवान् बुद्ध को भी अश्वत्थ वृक्ष के ही नीचे बुद्धत्व प्राप्त हुआ था। स्थावर वस्तुओं में हिमालय को, सरिताओं में गंगा को, पक्षियों में गरुड़ को तथा ऋतुओं में बसन्त ऋतु को महत्ता दी गई है। स्त्रीलिंग चीजों में कीर्ति, वाणी, स्मृति, बुद्धि और धृति (धैर्य) को महत्ता दी गई है। यह भी हमारी जातीय मनोवृत्ति का परिचायक है।

यह तो रहे संस्कृति के बाह्य अंग। संस्कृति के आंतरिक अंगों पर भारत में विशेष बल दिया गया है। धर्म ग्रंथों में अच्छे मनुष्यों के जो लक्षण बतलाए गए हैं, मनुस्मृति में जो धृति, क्षमा, दया, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध धर्म के दस लक्षण बतलाए गए हैं, वे सब भारतीयों की मानसिक और आध्यात्मिक संस्कृति के अंग हैं। श्रीमद्भगवद्गीता में दैवी सम्पदा वालों के लक्षण दिए गए हैं जिनमें 'अभय' को सबसे पहला स्थान दिया गया है। स्थितप्रज्ञ के लक्षण (दूसरा अध्याय), सात्विक चीजों के लक्षण (सत्रहवाँ अध्याय) आदि सब भारतीय संस्कृति के अनुकूल सभ्य और शिष्ट पुरुष के लक्षण हैं। इसलिए सभी महाकाव्य ऐसे लक्षणों से भरे पड़े हैं। 'रघुवंश' में रघुकुल के राजाओं के जो गुण बतलाए गए हैं, वे न केवल भारत के सांस्कृतिक आदर्शों के परिचायक हैं, बल्कि उनसे अतीत का भव्य चित्र हमारे सम्मुख आ जाता है। देखिए –

''दूसरों को दान देने के लिए ही जो सम्पन्न बनते थे (उनका धन दानाय था), सत्य के लिए ही मितभाषी बने हुए थे (मिथ्याभिमान के कारण वे कम बातचीत नहीं करते थे), जो यश के लिए विजय प्राप्त करते थे (धन-राज्य छीनने के लिए नहीं ) (यश को अपने यहाँ अधिक महत्त्व दिया गया है। हमारे पूर्वज यश के लिए समस्त संपदा और वैभव त्यागने को सदैव तत्पर रहते थे। अर्जुन से भी श्रीकृष्ण ने अंतिम अपील यही की थी – 'यशो लभस्व'), संतान के लिए (कामोपभोग के लिए नहीं, वरन् पितृ-ऋण चुकाने और समाज को अच्छे नागरिक देने के अर्थ) जो गृहस्थ बनते थे, बाल्यावस्था में जो विद्याध्ययन करते थे, यौवन में विषय-भोग करने वाले, वृद्धावस्था में मुनिवृत्ति को धारण करने वाले और योग द्वारा शरीर को त्यागने वाले (आजकल तो रोगेणान्ते तनुत्यजाम् की बात हो गई है) ऐसे रघुवंशियों के कुल का मैं (कालिदास) वर्णन करता हूँ; यद्यपि मेरे पास वाणी का वैभव अधिक नहीं है। इससे पता चलता है कि प्राचीन भारत में त्याग, सत्य, यश, आश्रम–विभाग और सामाजिक कल्याण की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। संक्षेप में भारतीय संस्कृति के मुख्य-मुख्य अंग इस प्रकार बतलाए जा सकते हैं –

**(1) आध्यात्मिकता** – इसके अन्तर्गत नश्वर शरीर का तिरस्कार, परलोक, सत्य, अहिंसा, तप आदि आध्यात्मिक मूल्यों को अधिक महत्त्व देना, आवागमन की भावना, ईश्वरीय न्याय में विश्वास आदि बातें

हैं। हमारे यहाँ कि संस्कृति तपोवन-संस्कृति रही है जिसमें विस्तार ही विस्तार था – **'प्रथम साम रव तव तपोवने प्रथम प्रभात तवगमने।'** विस्तार के वातावरण में आत्मा का संकुचित रूप नहीं रह सकता था इसी के अनुकूल आत्मा का सर्वव्यापक विस्तार माना गया है। इसीलिए हमारे यहाँ सर्वभूत हित पर अधिक महत्त्व दिया गया है – **'आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पश्यति।'**

कीरी और कुंजर में एक ही आत्मा का विस्तार देखा जाता है। इसी से गांधीजी की सर्वोदय की भावना को बल मिला। हमारे यहाँ के मनीषी **'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः'** का पाठ पढ़ते थे।

नश्वर शरीर के तिरस्कार की भावना हमारे यहाँ के लोगों को बड़े-बड़े बलिदानों के लिए तैयार कर सकी। शिवि, दधीचि, मोरध्वज इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। महाराज दिलीप ने गुरु की प्रसन्नता के लिए नन्दिनी नाम की गौ को चराने का व्रत धारण किया था। उसकी सिंह से रक्षा करने के लिए वे अपने प्राणों का भी उत्सर्ग करने को तैयार हो जाते हैं। वे सिंह से कहते हैं कि यदि तुम मुझ पर दया ही करना चाहते हो तो मेरे यश-शरीर पर दया करो; पंचभूतों से बने हुए नाशवान् शरीर के पिण्डों पर मुझ जैसे लोगों की आस्था नहीं होती। हमारे यहाँ का मार्ग साधना का मार्ग रहा है और तप, त्याग और संयम को महत्ता दी गई है। क्या बौद्ध, क्या जैन और क्या वैष्णव, सभी लोग इन गुणों की सराहना करते हैं।

हमारे यहाँ की आध्यात्मिकता मन और बुद्धि से परे जाती है। वह आत्मा का साक्षात् अनुभव करना चाहती हैं। यही भारतीय और पाश्चात्य दर्शनों का अंतर है। हमारे दर्शन का अर्थ आत्मा का दर्शन ही है, पाश्चात्य देशों में वह बुद्धि-विलास के रूप में रहा है।

**(2) समन्वय बुद्धि** – आत्मा की एकता के आधार पर हमारे यहाँ अनेकता में एकता देखी गई है।

इसी से मिलती-जुलती समन्वय-भावना है। हमारे विचारकों ने सभी वस्तुओं में सत्य के दर्शन किए हैं। उनका धर्म अविरोधी धर्म रहा है।

इसीलिए हमारे यहाँ धर्म–परिवर्तन को विशेष महत्त्व नहीं दिया गया है। फिर भी संस्कृतियों का आदान-प्रदान हुआ है। तुलसीदासजी जैसे महात्मा ने, जो भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं, समन्वय बुद्धि से ही काम लिया था। उन्होंने शैव और वैष्णवों का, ज्ञान और भक्ति का तथा अद्वैत और विशिष्टाद्वैत का समन्वय किया था। आधुनिक कवियों में प्रसादजी ने अपनी 'कामायनी' में ज्ञान, इच्छा और क्रिया का समन्वय किया है। मानव-कल्याण में ज्ञान, इच्छा, क्रिया का पार्थक्य ही बाधक होता है।

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है, इच्छा पूरी क्यों हो मन की।
एक दूसरे से न मिल सके, यह विडम्बना है जीवन की।।

**(3) वर्णाश्रम विभाग** – हमारी संस्कृति में कार्यविभाजन को बड़ा महत्त्व दिया गया है। समाज को भी चार भागों में बाँटा है और मानव-जीवन को भी। सामाजिक विभाजन बढ़ते-बढ़ते संकुचित और अपरिवर्तनीय बन गया। अपरिवर्तनीय बनने में भी इतनी हानि न थी यदि सबका महत्त्व सिद्धान्त और व्यवहार दोनों में एक-सा मान लिया गया होता। कुछ लोगों ने श्रेष्ठता का अधिकार कर लिया और 'पण्डितः समदर्शिनः' की बात भूल गए। हमारे सभी प्रचारकों और सुधारकों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई और उन सब में जोरदार आवाज रही, भगवान् गौतम बुद्ध, संत कबीर और महात्मा गाँधी की। पुरुष सूक्त ने तो चारों वर्णों को एक ही विराट् शरीर का अंग माना है – **'ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीत् बाहू राजन्यः कृतः।'**

एक ही शरीर के विभिन्न अंगों में कोई ऊँचा–नीचा नहीं होता। सामाजिक संगठन का हमारे यहाँ बहुत ऊँचा आदर्श रखा गया था। वैदिक ऋषियों की तो यही भावना थी, लेकिन हम उसको भुला बैठे।

**(4) अहिंसा, करुणा, मैत्री और विनय** – इन चार गुणों को इसलिए ही रखा गया है कि इनके मूल में अहिंसा की भावना है और करुणा, मैत्री तथा विनय अहिंसा व्रत के पालन में सहायक होते हैं। हिंसा केवल वध करने में ही नहीं होती है वरन् किसी का उचित भाग ले लेने और दूसरों का जी दुखाने में भी। इसीलिए हमारे यहाँ 'सत्यं ब्रूयात्' के साथ 'प्रियं ब्रूयात्' का पाठ पढ़ाया गया है। करुणा प्रायः छोटों के प्रति होती है, मैत्री बराबर वालों के प्रति और विनय बड़ों के प्रति किंतु हमको सभी के प्रति शिष्टता का व्यवहार करना चाहिए। विनय शील का एक अंग है, उसको बड़ा आवश्यक माना गया है। भगवान् कृष्ण ने ब्राह्मण के विशेषणों में विद्या के साथ विनय भी लगाया – **'विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे'।** विनय भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है। असांस्कृतिक लोग ही उद्धत होते हैं।

**(5) प्रकृति प्रेम** – भारतवर्ष पर प्रकृति की विशेष कृपा रही है। यहाँ सभी ऋतुएँ समय पर आती हैं और पर्याप्त काल तक ठहरती हैं। ऋतुएँ अपने अनुकूल फल-फूलों का सृजन करती हैं। धूप और वर्षा के समान अधिकार के कारण यह भूमि शस्यश्यामला हो जाती है। यहाँ का नगाधिराज हिमालय कवियों को सदा से प्रेरणा देता आ रहा है और यहाँ की नदियाँ मोक्षदायिनी समझी जाती रही हैं। यहाँ कृत्रिम धूप और रोशनी की आवश्यकता नहीं पड़ती। भारतीय मनीषी जंगल में रहना पसंद करते थे। वृक्षों में पानी देना एक धार्मिक कार्य समझते हैं। सूर्य और चंद्र दर्शन नित्य और नैमित्तिक कार्यों में शुभ माना जाता है। यहाँ के पशु-पक्षी, लता-गुल्म और वृक्ष तपोवनों के जीवन का एक अंग बन गए थे, तभी तो शकुन्तला के पतिगृह जाते समय जाने की उन सबों से आज्ञा चाहते हैं –

पीछे पीवत नीर जो पहले तुमको प्याय।
फूल–पात तोरति नहीं गहने हू के चाय।।
जब तुअ फूलन के दिवस आवत हैं सुखदान।
फूली अंग समाति नहिं उत्सव करत महान।।
सो यह जाति शकुन्तला आज पिया के गेह।
आज्ञा देहु पयान की तुम सब सहित सनेह।।

हमारी संस्कृति इतने में ही संकुचित नहीं है। पारिवारिकता पर हमारी संस्कृति में विशेष बल दिया गया है। भारतीय संस्कृति में शोक की अपेक्षा आनंद को अधिक महत्त्व दिया गया है। इसलिए हमारे यहाँ शोकान्त नाटकों का निषेध है। भारत में आतिथ्य को विशेष महत्त्व प्रदान किया गया है। अतिथि को भी देवता माना गया है – 'अतिथिदेवोभव'।

हमारी संस्कृति के मूल अंगों पर प्रकाश डाला जा चुका है। भारत में विभिन्न जातियों के पारस्परिक सम्पर्क में आने से संस्कृति की समस्या कुछ जटिल हो गई। पुराने जमाने में द्रविड़ और आर्य संस्कृति का समन्वय बहुत रीति से हो गया था। इस समय मुस्लिम और अंग्रेजी संस्कृति का मेल हुआ है। हम इन संस्कृतियों से अछूते नहीं रह सकते हैं। भारतीय संस्कृति की समन्वयशीलता यहाँ भी अपेक्षित है किंतु समन्वय में अपना न खो बैठना चाहिए। दूसरी संस्कृतियों के जो अंग हमारी संस्कृति में अविरोध रूप से

अपनाए जा सकें उनके द्वारा अपनी संस्कृति को सम्पन्न बनाना आपत्तिजनक नहीं। अपनी संस्कृति अच्छी हो या बुरी, चाहे दूसरों की संस्कृति से मेल खाती हो या न खाती हो, उससे लज्जित होने की कोई बात नहीं।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में धार्मिक कृत्यों में एकान्त-साधना पर अधिक बल दिया गया है, यद्यपि सामूहिक प्रार्थना का अभाव नहीं है। हमारे कीर्तन आदि तथा महात्मा गाँधी द्वारा परिचालित प्रार्थना-सभाएँ धर्म में एकत्व की सामाजिक भावना को उत्पन्न करती आई है। हमारे यहाँ सामाजिकता की अपेक्षा पारिवारिकता को महत्त्व दिया गया है। पारिवारिकता को खोकर सामाजिकता को ग्रहण करना तो मूर्खता होगी; किन्तु पारिवारिकता के साथ-साथ सामाजिकता बढ़ाना श्रेयस्कर होगा। भाषा और पोशाक में अपनत्व खोना जातीय व्यक्तित्व को तिलांजजि देना होगा। हमें अपनी सम्मिलित परिवार की प्रथा को इतना न बढ़ा देना चाहिए कि व्यक्ति का व्यक्तित्व ही न रह जाए और न व्यक्ति को इतना महत्त्व देना चाहिए कि गुरुजनों का आदर-भाव भी न रहे और पारिवारिक एकता पर कुठाराघात हो। कपड़े और जूतों की सभ्यता और कम से कम कपड़ा पहनने और नंगे पैर रहने की सभ्यता में भी समन्वय की आवश्यकता है। अंग्रेजी सभ्यता में जूतों का विशेष महत्त्व है, किंतु उसे अपने यहाँ के चौका और पूजागृहों की सीमा पर आक्रमण न करना चाहिए। हमारी सभ्यता मिट्टी और पीतल के बर्तनों की है। हमारी सभ्यता स्वास्थ्य विज्ञान के नियमों के अधिक अनुकूल है। यदि हम कुल्हड़ों के कूड़े का अच्छा बन्दोबस्त कर सकें उससे अच्छी कोई चीज नहीं है। आलस्य को वैज्ञानिकता पर विजय न पाना चाहिए। अँग्रेजी संस्कृति से भी सफाई और समय की पाबन्दी की बहुत-सी बातें सीखी जा सकती हैं, किंतु अपनी संस्कृति के मूल अंगों पर ध्यान रखते हुए समन्वय बुद्धि से काम लेना चाहिए। समन्वय द्वारा ही संस्कृति क्रमशः उन्नति करती रही है और आज भी हमें उसे समन्वयशील बनाना है।

•••

## शब्दार्थ –

कंज–कमल / स्थावर–स्थिर, अचल / कुंजर–हाथी / पंचभूत–पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश, पवन, पाँच तत्व जिनसे शरीर बना है / उद्धत–उग्र, प्रचंड / शस्यश्यामला–नई फसल की हरियाली / नैमित्तिक–किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिए हो / कुठाराघात–गहरी चोट / समन्वय–संयोग, मिलाप।

## वस्तुनिष्ठ प्रश्न –

1. 'भारतीय संस्कृति' निबंध के निबंधकार कौन हैं ?

   (क) बाबू घनश्यामदास (ख) बाबू गुलाबराय

   (ग) हरिश्चन्द्र (घ) आचार्य हजारी प्रसाद ( )

2. 'गोरस बेचन हरि मिलन, एक पंथ दो काज' लोकोक्ति का अर्थ है –

   (क) दूध बेचने जाना (ख) हरि से मिलना

   (ग) एक समय में दो कार्य संपन्न होना (घ) दो पक्षियों को मारना ( )

## अतिलघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. संस्कृति शब्द का क्या अर्थ है ?
2. संस्कृति के कितने पक्ष हैं ?
3. 'कुशल' शब्द का क्या अर्थ है ?
4. 'भाषा' संस्कृति का कौन-सा अंग है ?

## लघूत्तरात्मक प्रश्न –

1. मनुस्मृति में अच्छे मनुष्य के क्या लक्षण बताए गए हैं ?
2. 'रघुवंश' में रघुकुल के राजाओं के कौन-से गुण बताए गए हैं ?
3. मांगलिक कार्यों में किन पदार्थों को प्रमुख स्थान दिया जाता है ?
4. साधना मार्ग में किन तीन गुणों को महत्ता दी गई है ?
5. भारतीय और पाश्चात्य दर्शन में प्रमुख अंतर क्या है ?

## निबंधात्मक प्रश्न –

1. संस्कृति के बाह्यस्वरूप में किन बातों को स्थान दिया जाता है ?
2. पतिगृह जाते हुए शकुन्तला ने किनसे और क्यों आज्ञा प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की ?
3. भारतीय संस्कृति के प्रमुख अंगों पर संक्षेप में प्रकाश डालिए।
4. भारतीय संस्कृति में प्रकृति प्रेम की विशेषता को सोदाहरण समझाइए।
5. पाठ में आए निम्नलिखित गद्यांशों की सप्रसंग व्याख्या कीजिए –

   (क) हमारी संस्कृति इतने में ही संकुचित नहीं है। .....अतिथि को भी देवता माना गया है – 'अतिथिदेवोभव'।

   (ख) हमारे यहाँ सामाजिकता की अपेक्षा.....पारिवारिक एकता पर कुठाराघात हो।

•••